ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-3* June- 2021
Anthology : The Research

केल्सन का शुद्ध विधि का सिद्धांत : एक विश्लेषण

Kelson's Principle of Pure Law: An Analysis

Paper Submission: 05/06/2021, Date of Acceptance: 15/06/2021, Date of Publication: 18/06/2021

मनमीत सोनी
एडवोकेट
राजस्थान हाइकोर्ट
चूरू, राजस्थान, भारत

सारांश

हेन्स केल्सन अपने समय के एक सर्व–प्रमुख विधिशास्त्री थे। इन्होंने विधि और विधिशास्त्र पर जिस पद्धति से विचार किया, वह उनकी अपनी पद्धति थी। अपने पूर्व–विचारकों से किंचित प्रभावित होते हुए भी विधिशास्त्र को अन्य सामजिक–वैज्ञानिक अनुशासनों से पृथक करके उन्होंने जिस तरह विधिशास्त्र की अपनी सत्ता खड़ी की, यह बात उन्हें और भी अहम और प्रासंगिक बना देती है। 'शुद्ध विधि का सिद्धांत' कोई बहुत नई खोज नहीं थी। केल्सन के पहले के विधिशास्त्री भी इस विषय पर बात कर चुके थे। लेकिन वे सभी विधिशास्त्री 'शुद्ध विधि के सिद्धांत' की उस प्रकार व्याख्या नहीं कर पाए थे। जैसी केल्सन ने की। हालांकि इस सिद्धांत में निहित कुछ ऐसी तकनीकी विसंगतियां हमेशा से रही हैं– जिनके कारण यह सिद्धांत आने वाले समय में लगभग सर के बल धरती पर गिरा। लेकिन इस सब के बावजूद इस सिद्धांत ने विधिशास्त्र से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति में यह साहस अवश्य भरा कि वह इस विषय को अन्य सामजिक–वैज्ञानिक अनुशासनों से पृथक करके न केवल देख सके वरन् अपनी अवधारणाओं को भी इसी सिद्धांत के आधार पर पुष्ट कर सके। इस शोध–आलेख में केल्सन के 'शुद्ध विधि के सिद्धांत' का विहंगात्मक अवलोकन किया गया है।

Hans Kelsen was one of the most prominent jurists of his time. The method in which he considered law and jurisprudence was his own method. The way he established his authority in jurisprudence by separating jurisprudence from other socio-scientific disciplines, despite being somewhat influenced by his predecessors, makes him even more important and relevant. The 'Principle of Pure Law' was not a very new discovery. The jurists before Kelson had also spoken on this subject. But all those jurists were not able to explain the 'Principle of Pure Law' in the same way as Kelson did. Although there have always been some technical discrepancies inherent in this theory, Due to which this theory almost fell on the ground in the coming time. But in spite of all this, this theory must have instilled the courage in every person associated with jurisprudence that he could not only see this subject separately from other socio-scientific disciplines, but could also confirm his concepts on the basis of this principle. In this research article, a panoramic overview of Kelson's 'Principle of Pure Law' has been given.

मुख्य शब्द : संप्रभु, बाध्यकारी समादेश, 'देश, काल और कारणता', मूल्यपरक, उपयोगितावाद, कायिक सम्पूर्णता, विश्लेषणात्मक विचारधारा, मानकीय, प्रारूपिक, वस्तुनिष्ठ, आत्मनिष्ठ, मूलमानक।

Sovereign, Binding Mandate, Space, Time And Causality', Value-Oriented, Utilitarianism, Organic Completeness, Analytical Ideology, Normative, Typical, Objective, Subjective, Grundnorm.

प्रस्तावना

केल्सन से पहले विधि की जो भी व्याख्याएं उपलब्ध थीं, उनमें यह समस्या बहुत गहरी थी कि विधि और संप्रभु एक–दूसरे के पूरक बन कर रह गए थे। परिणाम यह होता था कि जब भी विधि की व्याख्या करनी होती थी तो विधि को संप्रभु के परिप्रेक्ष्य में ही परिभाषित करना पड़ता था। इससे न केवल विधि का फलक सीमित होता था बल्कि संप्रभु को भी जितना महत्त्व मिलना चाहिए, उससे अधिक महत्त्व मिलता था। विधि में एक प्रकार से 'मनोवैज्ञानिक भय' की उपस्थिति को आसानी से चीह्ना जा सकता था। यह ऑस्टिन और बेन्थम का

प्रभाव ही था जिससे बाहर आना आवश्यक हो गया था। बीसवीं शताब्दी में विधि को समझने का एक और ढंग सामने आया जिसे हम 'मानकीय प्रणाली' भी कह सकते हैं। प्रश्न यह उठता है कि मानकीय किसे कहा जाय? दरअसल मानकीयता का कोई सीधा अर्थ नहीं हो सकता। इसे सूत्ररूप में ऐसा जरूरी सूत्र कहा जा सकता है जो एक तर्क को दूसरे तर्क से आपस में जोड़े या किसी एक प्रस्थापना को दूसरी प्रस्थापना से जोड़े। साथ ही इन तर्कों और प्रस्थापनाओं के बीच अंतर इतना कम हो कि वे अवैज्ञानिक या दूर की कौड़ी प्रतीत न हों।

वियना स्कूल का नेतृत्व करने वाले हेंस केल्सन ने पुरानी समस्याओं के प्रति एक नया दृष्टिकोण पैदा किया। इन्होंने विधि को अन्य सामाजिक–वैज्ञानिक अनुशासनों से परे एक स्वतंत्र इकाई माना और विधि को आपस में गुंथी हुई प्रस्थापनाओं और तर्कों की सुदृढ़ नींव पर खड़ा करना चाहा। वे विधि का अध्ययन ऐसे रूप में करना चाह रहे थे कि विधि के बारे में कुछ निश्चित अनुमान लगाए जा सकें। यह बात जानते हुए भी कि विधि–अकादमिक सन्दर्भ में – पूरी तरह विज्ञान नहीं है। वे इस बात पर अटल रहे कि विज्ञान न होने के बावजूद कोई विषय इतना परतंत्र नहीं हो सकता कि उसका अस्तित्व अन्य विषयों पर निर्भर रहे। यह भी कहा जा सकता है कि केल्सन और उनके मित्रों ने विधि को एक परजीवी विषय के रूप में स्वीकार नहीं किया।

केल्सन ने यह विचार प्रकट किया कि कुछ ऐसे पूर्वानुमान हो सकते हैं जिनके आधार पर विधि को परिभाषित किया जा सकता है। जैसे –

1. विधिक मानक एक–दूसरे के परस्पर विरोधी नहीं हो सकते।
2. इन विधिक मानकों के भी कुछ सोपान तय किए जा सकते हैं।
3. इन विधिक मानकों के सोपान तभी तय किए जा सकते हैं, जब इन्हें नियंत्रित करने वाला कोई ऐसा मानक मान लिया जाए जिसके अस्तित्व के बारे में कोई प्रश्नचिह्न नहीं हो। यह मानक न तो पूरी तरह से कल्पना पर आधारित हो और न ही इसकी उपस्थिति को लेकर किसी के मन में किसी प्रकार का संशय हो। आगे चलकर केल्सन ने इस मानक को 'मूलमानक' का नाम दिया।

अध्ययन का उद्देश्य

विधि एक ऐसा अनुशासन है, जिसमें स्थापित सिद्धांतों की समय–समय पर पुनर्व्याख्या करना आवश्यक होता है, क्योंकि इससे प्रत्यक्ष रूप से न्याय प्रभावित होता है। विभिन्न मानकों के आधार पर केल्सन का शुद्ध विधि का सिद्धांत विधि–शास्त्र की दृष्टि से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कितना औचित्यपूर्ण है – इस प्रश्न का अवधारणात्मक विश्लेषण करना ही इस शोध–पत्र का उद्देश्य है।

केल्सन का शुद्ध विधि का सिद्धांत : परिचय

केल्सन का 'शुद्ध विधि का सिद्धांत' दरअसल बेन्थम और ऑस्टिन के 'उपयोगितावाद' से आगे की यात्रा का परिणाम था। बेन्थम और ऑस्टिन ने प्राकृतिक विचारधारा से पीछा छुड़वाने के चाहे जितने भी प्रयास किए हों लेकिन वे भी प्राकृतिक विचारधारा से कभी मुक्त नहीं हो पाए। बेन्थम और ऑस्टिन ने जिस उपयोगितावाद की बात अपनी प्रस्थापनाओं में की है, उन्हीं प्रस्थापनाओं में विधायिका पर इस बात का दबाव डाला गया है कि वह उपयोगितावाद के आधार पर ही अपनी मानसिकता में विश्लेषणात्मक रहे। यह प्राकृतिक विचारधारा का विश्लेषणात्मक विचारधारा के धरातल पर पीछे के दरवाजे से प्रवेश था। हालांकि बेन्थम और ऑस्टिन की तरह केल्सन भी विधि 'जो है' और 'जो होनी चाहिए' के अंतर पर उतने ही दृढ थे या यह भी कहा जा सकता है कि इस अंतर को उन्होंने अधिक तीक्ष्णता से अनुभव किया और न केवल अनुभव किया, बल्कि विधि के दर्शन में वे उसे उस सीमा तक ले गए, जहाँ शुद्धता का आग्रह दुराग्रह में बदलता हुआ दिखाई देता है। यहाँ इस बात की चर्चा करना भी समीचीन होगा कि विश्लेषणात्मक विचारधारा और केल्सन की प्रस्थापनाओं में मूल समानताएँ क्या हैं।

जहाँ केल्सन की विधिक व्यवस्था 'निश्चयात्मक मानकों की अंतर्सम्बंधित कायिक सम्पूर्णता' पर आधारित है वहीं बेन्थम और ऑस्टिन विधि को तार्किक रूप से अंतर्सम्बंधित अवधारणाओं की व्यवस्था मानते हैं। जिस प्रकार बेन्थम और ऑस्टिन ने 'विधि जो है' और 'विधि जो होनी चाहिए' के बीच तीक्ष्ण विभेद को स्वीकार किया है उसी प्रकार केल्सन ने भी इन दोनों के बीच तीक्ष्ण विभेद को अपने यहाँ मान्यता दी है। केल्सन की 'प्रमुखतः उत्पीड़क व्यवस्था' और विश्लेषणात्मक विचारधारा की 'अनुशास्ति समर्थित समादेश की भावना' में कहीं कोई अधिक अंतर नहीं है। इन दोनों ही विचारधाराओं का अन्य सामाजिक–वैज्ञानिक अनुशासनों से सम्बन्ध लगभग न के बराबर है। और ये दोनों ही विचारधाराएँ विधि को एक अलग स्वतंत्र अनुशासन के रूप में देखती हैं।

अब यह भी देखा जाना चाहिए कि केल्सन के शुद्ध विधि के सिद्धांत के ऐसे मूल तत्त्व कौनसे हैं, जो इस सिद्धांत को सिद्धांत विशेष के रूप में न केवल स्थापित करते हैं वरन अपरिहार्य भी बनाते हैं –

यह सिद्धांत विधि में निहित अनिश्चितता और अव्यवस्था को कम करता है।

1. यह विधि को एक सांगठनिक पद्धति के रूप में प्रतिष्ठापित करवाता है।
2. यह विधि के बहुअर्थी होने को नियंत्रित करता है।
3. यह विधि को एक वैज्ञानिक आधार देता है।
4. यह विधि को कोरी संकल्पनात्मक अभिव्यक्ति से दूर ले जाता है।
5. यह विधि को मानकीय विज्ञान के रूप में स्थापित करता है।
6. यह विधि को प्राकृतिक विज्ञान की निगूढ़ परपराओं से विलग करता है।

विधि के शुद्ध सिद्धांत की व्याख्या

यह समझना आवश्यक है कि केल्सन की दृष्टि में यह कोई राजनैतिक या सामाजिक सिद्धांत नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि यह नियम किसी प्रयोगशाला से निसृत हुआ हो। केल्सन के अनुसार इसे इसलिए शुद्ध कहा जाना चाहिए, क्योंकि यह निश्चयात्मक विधि की पहचान में सभी बाह्य तत्त्वों को अलग कर देता है और

उनके अध्ययन को विधि के अध्ययन में एक जरूरी सहायक के रूप में देखने से इनकार कर देता है। चूँकि केल्सन की दृष्टि में 'न्याय' विधि के अध्ययन की विषयवस्तु नहीं है, इसलिए विधि का शुद्ध सिद्धांत न्याय के दर्शन से किसी भी प्रकार का कोई सम्बंध नहीं रखता। केल्सन के अनुसार न्याय का दर्शन एक बेहूदा विचार है, जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता कम से कम विधि के मानकीय अध्ययन के दौरान तो नहीं ही होनी चाहिए।

केल्सन का शुद्ध विधि का सिद्धांत न केवल वैज्ञानिक–सामाजिक अनुशासनों से विधि को अलग करके देखता है वरन वह अब तक की विधि के अध्ययन की यात्रा में विधि के साथ जोड़े गए आनुशांगिक उपागमों की अर्थवत्ता को भी चकनाचूर कर देता है। विधि के साथ जोड़े गए सभी उपसर्ग और प्रत्यय केल्सन की दृष्टि में अनावश्यक हैं। केल्सन के अनुसार ऐसा कोई भी उपसर्ग या प्रत्यय न केवल विधि के अध्ययन में बाधा खड़ी करता है, बल्कि किए जा रहे अध्ययन को किसी सीमा तक विरूपित भी कर देता है।

केल्सन के मानक का अर्थ है – कुछ होना चाहिए या घटित होना चाहिए, यद्यपि प्रयोगशाला से निसृत विज्ञान कभी भी 'होना चाहिए' की बात नहीं करता। वह तो यह कहता है कि ऐसा हुआ है, तो ऐसा ही होगा – लेकिन केल्सन अच्छी तरह समझते थे कि विधि प्रयोगशाला से निसृत विज्ञान नहीं है। तमाम प्रकार की काट–छाँट के बावजूद इसमें किसी सीमा तक वह सामाजिकता शेष रहेगी ही, जो इसे रूढ़ अर्थों में विज्ञान से अलग कर देगी। इसीलिए केल्सन अपने मूल अर्थ में इतने दुराग्रही नहीं हैं, वरन वे यह कहते हैं कि कम से कम इतना तो होना ही चाहिए कि चोरी का परिणाम कोई दंड हो अर्थात् चोरी के बाद दंड की व्यवस्था तो होनी ही चाहिए। यदि इतनी निश्चितता भी नहीं रखी गई, तो फिर एक विषय के रूप में विधि को पढ़ने और पढ़ाने का क्या अर्थ रह जाएगा? केल्सन अपने मानक को तीन रूपों में सामने रखते हैं –

1. जहाँ वह निश्चित व्यवहार का आदेश देता है।
2. जहाँ वह निश्चित व्यवहार की अनुमति देता है।
3. जहाँ वह निश्चित व्यवहार के लिए अधिकृत करता है।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना समीचीन है कि प्राकृतिक विज्ञान का 'चाहिए' किस प्रकार विधि के 'चाहिए' से भिन्न है। जहाँ प्राकृतिक विज्ञान के 'चाहिए' में किसी भी प्रकार की निश्चितता का अभाव होता है वहीं विधि के 'चाहिए' में 'विधिक चाहिए' की उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है। केल्सन ने उदाहरण दिया है कि विधि का नियम प्राकृतिक नियम की तरह यह नहीं कहता कि यदि 'अ' है, तो 'ब' है – बल्कि वह यह कहता है कि यदि 'अ' है तो 'ब' होना चाहिए। साथ ही नैतिक विज्ञान का 'चाहिए' भी विधि के 'होना चाहिए' से इस प्रकार अलग है कि जहाँ नैतिक विज्ञान के 'चाहिए' में आत्मनिष्ठता अधिक होती हैं, वहीं विधि के 'होना चाहिए' में वस्तुनिष्ठता अधिक होती है।

शुद्ध विधि के सिद्धांत में उत्पीड़न का तत्त्व

केल्सन के अनुसार किसी भी प्रकार की विधि में दो तत्त्व आवश्यक हैं। पहला यह कि विधि मानवीय व्यवहार से संबंधित आदेश है और दूसरा यह कि विधि मानवीय व्यवहार से संबंधित उत्पीड़क आदेश है, लेकिन केल्सन कहीं भी ऑस्टिन द्वारा आवश्यक माने गए 'मनोवैज्ञानिक भय' से सहमत नहीं होते हैं। केल्सन के अनुसार विधि 'मनोवैज्ञानिक तत्त्व से हीन समादेश' है।

केल्सन के अनुसार विधि द्वारा प्रयुक्त अनुशास्ति बाह्य तत्त्वों पर आधारित अनुशास्ति है – जो जीवन, स्वतंत्रता या सम्पत्ति से बलपूर्वक वंचित किए जाने या प्रभावित व्यक्ति द्वारा बुराई समझे जाने वाले किसी अन्य तरीके से प्रयुक्त होती है। केल्सन के अनुसार विधि ऑस्टिन की तरह विनिर्दिष्ट प्राधिकारी द्वारा लागू किए जाने वाला नियम नहीं है, बल्कि यह यह तो एक मानक या नियम है – जो अनुशास्ति के रूप में उत्पीड़क का विशिष्ट प्रावधान प्रस्तुत करता है।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि केल्सन के यहाँ उत्पीड़न का नियम संप्रभु के हाथ की तलवार न होकर एक निश्चित विधिक तंत्र की आवश्यक व्यवस्था बनकर उभरता है। इसलिए इसमें मनोवैज्ञानिक भय का तत्त्व दिखाई नहीं देता। हाँ, आचरण के स्तर पर कोई संप्रभु या तंत्र इस उत्पीड़न के तत्त्व को कैसे उपयोग में लाएगा – इसके बारे में तो कोई भी विधि–शास्त्री भविष्यवाणी नहीं कर सकता।

मूलमानक और मानकीय सोपानात्मक संरचना

केल्सन की विधिक अवधारणा में मूलमानक वही स्थान रखता है, जो ऑस्टिन की विधिक अवधारणा में संप्रभु रखता है। मूलमानक की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। स्वयं केल्सन के शब्दों में यदि समझा जाए तो केल्सन इसे 'अनुभवातीत तार्किक पूर्वानुमान' कहते हैं। केल्सन के अनुसार मूलमानक किसी स्वतंत्र अन्वेषण की उपज नहीं है।

केल्सन जब मूलमानक का अपनी पुस्तक में विवेचन करते हैं, तो कुछ अन्य जरूरी बातों को भी समझाते चलते हैं। केल्सन के अनुसार मूलमानक को संविधान या संप्रभु समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। यह ठीक है कि मूलमानक अपने स्वरूप में संविधान या संप्रभु होने का आभास प्रकट करता है, लेकिन वह वस्तुतः संविधान या संप्रभु है नहीं। वह तो संविधान और संप्रभु के पीछे एक परछाई की भाँति सक्रिय रहकर संविधान और संप्रभु को अधिकारिकता प्रदान करता है। यदि एक निश्चित व्यवस्था के तहत संविधान या संप्रभु में परिवर्तन होता है, तो मूलमानक में भी परिवर्तन आ जा जाता है। केल्सन के अनुसार मूलमानक किसी भी स्थिति में प्राकृतिक विचारधारा की पिछले दरवाजे से एंट्री नहीं है। केल्सन यह भी कहते हैं कि मूलमानक कभी भी किसी संविधान की अंतर्वस्तु निर्धारित नहीं कर सकता। केल्सन के अनुसार किसी विधि–व्यवस्था में केवल एक ही मूलमानक हो सकता है।

केल्सन ने विधि के सिद्धांतों को दो भागों में विभाजित किया है – स्थिर सिद्धांत और प्रगतिशील सिद्धांत। केल्सन ने ऑस्टिन के द्वारा प्रतिपादित विधिक व्यवस्था को उत्तरोत्तर प्रगति के दृष्टिकोण से स्थिर माना

है। केल्सन के अनुसार ऑस्टिन के मॉडल में विधि के भीतर सुधार की गुंजाइश ठप्प हो जाती है। केल्सन के अनुसार विधि में उत्तरोत्तर सुधार होते रहने चाहिए, लेकिन शर्त यह है कि सभी सुधार तय मानकों के आधार पर ही हों। यदि सुधारों को खुला छोड़ दिया जाएगा, तो वे तय मानकों के आधार पर पूर्व से चली आ रही व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करेंगे और यह मूलमानक के लिए भी ठीक नहीं होगा। उदाहरण के लिए संविधि द्वारा भाषण, प्रेस और धर्म की स्वतंत्रता सीमित नहीं की जानी चाहिए या निश्चित रूप से किया जाना चाहिए।

मूलमानक की आलोचना

केल्सन के द्वारा प्रतिपादित मूलमानक की अवधारणा की बहुत आलोचना हुई है, जिसे इन बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है –

1. केल्सन द्वारा प्रतिपादित शुद्ध विधि का सिद्धांत सतही रूप में जितना शुद्ध दिखाई पड़ता है, वह मूलमानक की अवधारणा तक आते–आते उतना शुद्ध नहीं रह जाता। स्वयं केल्सन को यह बार–बार स्पष्ट करना पड़ा कि मूलमानक की अवधारणा किसी भी दृष्टि से समाजशास्त्रीय नहीं है, लेकिन ध्यान से देखा जाए तो मूलमानक में एक समाजशास्त्रीय कोण उभर कर आता ही है। इस तरह उन मानकों की भी शुद्धता प्रभावित होती है, जो मूलमानक से न केवल सम्बद्ध हैं वरन् अपनी अधिकारिता और वैधानिकता भी मूलमानक से ही प्राप्त करते हैं।
2. केल्सन पर कांट का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कांट की 'क्रिटीक ऑफ प्योर रीजन' में जिस 'देश, काल और कारणता' की बात की गई है, वही बात किसी न किसी रूप में केल्सन के यहाँ 'मूलमानक' में दिखाई देती है। केल्सन का मूलमानक विधि के भीतर से न जन्मा होकर विधि के बाहर से आया हुआ प्रतीत होता है।
3. यह भी देखा जाना चाहिए कि मूलमानक अपनी वैधता कहाँ से प्राप्त करता है? यदि मूलमानक की वैधता का कहीं कोई स्रोत नहीं है, तो उसकी शुद्धता का दावा कैसे किया जा सकता है? यदि मूलमानक की वैधता संविधान या संप्रभु को ही तय करनी है, तो देखा जाना चाहिए कि मूलमानक इस स्थिति में संविधान या संप्रभु को मान्यता देने की स्थिति में है या नहीं?

मूलमानक की आलोचना करते समय दो मामले बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। पहला मामला स्टेट बनाम दोसो, Pak LD AIR 1958 SC 533 का है, जिसमें पाकिस्तानी उच्चतम न्यायलय ने केल्सन के सिद्धांतों को मानते हुए जबरन सत्ता हथियाने वाले को प्रभावकारी रूप से सत्ता में माना – लेकिन इस निर्णय के प्रकाशन के दूसरे ही दिन वह सत्ता हथियाने वाला अपदस्थ हो गया। उसके बाद जिलानी बनाम पंजाब सरकार, Pak LD AIR 1972 SC 139 के एक मामले में पकिस्तान के उच्चतम न्यायलय ने केल्सन के सिद्धांत को पूर्णतः अस्वीकार कर पूर्व निर्णय को निरस्त कर प्रथम और द्वितीय दोनों सत्ता हथियाने वालों को अवैध घोषित कर दिया। डायस ने टिप्पणी की है कि दूसरा निर्णय उस समय दिया गया था, जब सत्ता हथियाने वाली शासन–व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी।

मदजिम्बामूटो बनाम लार्डनर–बर्क का मामला रोडेशियन विद्रोह के समय सामने आया था। सन 1965 का क्रांतिकारी संविधान प्रभावकारी माना जा रहा था, परन्तु दो वर्ष तक न्यायालय ने इसे विधिक नहीं माना। इस दौरान न्यायालय अवैध शासन प्रणाली के कुछ आदेशों को वैध मानने को तैयार था, फिर भी 1961 के रद्द किए गए संविधान को अवैध शासन की विधियों की विधिमान्यता का नियंत्रक माना गया। केल्सन का सिद्धांत इसका स्पष्टीकरण नहीं दे सकता।

इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि मूलमानक विधिक मानक न रहकर एक वैचारिक मानक में तब्दील हो जाता है –

1. डायस के अनुसार क्रांतिकारी स्थितियों में मूलमानक कोई निश्चित रास्ता नहीं दिखाता। यह इस प्रकार अपना स्थान बदलता है, जैसे घड़ी में पेंडुलम अपना स्थान बदलता है। क्रांतिकारी स्थिति में जब निर्देश की आवश्यकता होती है, तब यह बेकार हो जाता है – क्योंकि मूलमानक का चयन प्रभावकारिता द्वारा अनम्य रूप में निर्देशित नहीं होता, बल्कि यह राजनैतिक निर्णय पर आधारित होता है। केल्सन भी इसे स्वीकार करते हैं।
2. केल्सन के शुद्ध विधि के सिद्धांत की आलोचना करते हुए लास्की कहते हैं कि इसे तर्क में तो अभ्यास में लाया जा सकता है, लेकिन जीवन में नहीं। लास्की ने संभवतः ऐसा इसलिए कहा कि यह बात पढ़ते हुए तो बहुत आकर्षक लगती है कि कहीं कोई मूलमानक होगा, जो संविधान या संप्रभु के पीछे चेतस ऊर्जा के रूप में हमेशा उपलब्ध रहेगा, लेकिन इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि जब इसे प्रयोग में लाने की बात आएगी – तो यह पूरी तरह से एक परजीवी अवधारणा में नहीं बदल जाएगा।
3. ऑस्टिन और बेन्थम की तरह केल्सन भी विधि में उत्पीड़क तत्त्व को आवश्यक मानते हैं। इस कारण विधि का परिदृश्य छोटा एवं संकुचित हो जाता है। साथ ही केल्सन अपनी अवधारणा में अनुशास्ति को अनावश्यक महत्त्व भी देते हैं। इस अत्यधिक महत्त्व देने के कारण अधिकार और कर्त्तव्य के मध्य जो आवश्यक अनुपात होता है, उसके बिगड़ने की संभावना बहुत बढ़ जाती है।

शुद्ध विधि के सिद्धांत के परिणाम

1. केल्सन की मूलमानक की अवधारणा के चलते लोक–विधि और प्राइवेट विधि में अंतर लगभग समाप्त हो जाता है।
2. केल्सन के सिद्धांत के अनुसार मौलिक विधि और प्रक्रियात्मक विधि का अंतर सापेक्ष बन जाता है, जिसमें प्रक्रिया का महत्त्व अधिक है। यह विधिक व्यवस्था को ठोस रूप देने में प्रमुख अंग और प्रक्रिया है।
3. केल्सन के सिद्धांत में कर्त्तव्य अध्ययन का प्रमुख बिंदु बन जाता है और अधिकार नेपथ्य में चला जाता

है। वर्तमान राज्यों की विधिक व्यवस्थाएँ इस मॉडल पर काम नहीं करतीं।

4. चूँकि केल्सन के लिए 'व्यक्ति' विधि व्यवस्था को आकार देने का एक 'उपकरण' या 'टूल' मात्र है, इसलिए प्राकृतिक और विधिक व्यक्ति का अंतर अस्पष्ट हो जाता है।
5. केल्सन की विधिक अवधारणा को पढ़ते हुए यह आभास होता है कि राज्य मानव–व्यवहार और सामाजिक दबाव की एक व्यवस्था मात्र है। जब तक विधि में बल को नहीं मिला दिया जाता, तब तक विधि ठीक तरह से काम नहीं कर सकती। आगे चलकर यही बात विधि और राज्य में न के बराबर अंतर कर देती है। विधि से इतर राज्य का अस्तित्व या राज्य की इच्छा के रूप में विधि का अस्तित्व शुद्ध विधि के सिद्धांत में मान्य नहीं है।

केल्सन का मूलमानक और भारत में इसकी स्थिति

भारत की अपनी एक सनातन चेतना है, जो युगों से रही है। कोई भी नया विचार इसे प्रभावित तो अवश्य करता है, लेकिन इसके मूल स्वरूप में परिवर्तन नहीं लाता। परिणाम यह होता है कि भारत प्रत्येक विचार को उसकी सम्पूर्णता में देखता–परखता है और ऐसे तत्त्वों से दूरी बना लेता है, जो इसके हित में प्रतीत नहीं होते। केल्सन के मूलमानक की अवधारणा के साथ भी भारतीय न्यायालयों ने यही आचरण किया। भारतीय न्यायालयों ने इस बात को स्वीकार किया कि मूलमानक ही संविधान नहीं है, अपितु मूलमानक संविधान के भीतर रची–बसी वह शक्ति है – जो इसे संविधान के रूप में स्वीकार करने और इसे लागू करवाने के लिए हमें बाध्य करती है।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, (1973)4 SCC 225 के मामले में उच्चतम न्यायलय ने अपना यह मत स्पष्ट किया था कि संविधान में चाहे कितने भी और कैसे भी परिवर्तन हो जाएँ, ये संविधान के मूल ढाँचे में किसी भी प्रकार का बदलाव नहीं कर सकते।

इंदिरा नेहरू गाँधी बनाम राज नारायण, (1976)1 उम. नि. प. 1 के मामले में भी यह स्पष्ट किया गया कि संवैधानिक संशोधन को भी वह प्रास्थिति प्राप्त नहीं है, जो स्वयं संविधान को प्राप्त है। संविधान मूलमानक है, अतः उसकी संवैधानिकता को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता – जबकि संविधान की संशोधन–शक्ति के प्रयोग को प्रश्नगत किया जा सकता है और उसके प्रयोग की विधिमान्यता को संवैधानिक उपबंधों की कसौटी पर परखा जाता है।

गवर्नमेंट ऑफ आंध्र प्रदेश बनाम पी. लक्ष्मी देवी, (2008) 4 SCC 720 के वाद में न्यायाधीश एच. के. सेमा और न्यायाधीश मार्कंडेय काटजू ने स्पष्ट किया है कि भारत में संविधान मूलमानक है और मानकीय श्रेणीबद्धता निम्नवत है–

1. भारत का संविधान।
2. सांविधिक विधि, जो संसद या राज्य विधायिका द्वारा निर्मित है।
3. प्रत्यायोजित विधान, जो संविधि के अंतर्गत नियम या विनियम के रूप में निर्मित हो।
4. संविधि में निर्मित शुद्ध कार्यपालिक आदेश।

निष्कर्ष

यह विधि या विधिशास्त्र विषय की नियति या विडम्बना ही कही जाएगी कि इसमें निहित प्रत्येक पश्चवर्ती अवधारणा ने प्राकृतिक विचारधारा के विरोध में किसी नए और ताजा विचार का झंडा तो बुलंद किया, लेकिन अंततः उसका रूप प्राकृतिक विचारधारा से ही मेल खाने लगा। केल्सन ने मूलमानक की अवधारणा के माध्यम से जिस प्राकृतिक और विश्लेषणात्मक विचारधारा को चुनौती दी और विधि को अन्य सभी सामाजिक–वैज्ञानिक अनुशासनों से पृथक करने का प्रयास किया गया, वह सफल नहीं हो सका। विधि अपने मूल में जिस प्रकार का अनुशासन है, वह इसे विज्ञान की तरह प्रायोगिक और स्पष्ट होने की छूट नहीं देता। यही कारण है कि मूलमानक विधि के भीतर से नहीं वरन् विधि के बाहर से आया हुआ तत्त्व प्रतीत होता है, जिसकी स्वयं की कोई अधिकारिता ही नहीं। फिर भी केल्सन को इस बात का श्रेय तो अवश्य दिया जाना चाहिए कि उन्होंने विधि को अपने पैरों पर खड़े होने जितनी शक्ति दी। अन्य अनुशासनों के ज्ञान–विज्ञान ने जिस तरह विधि के विषय को लगभग अपाहिज कर रखा था, वह इस विषय के लिए कोई शुभ संकेत नहीं था। तमाम तरह की काट–छाँट के पश्चात् भी विधि एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में उभर कर सामने आता है, फिर भी यह कहना होगा कि विधि को अन्य सामाजिक–वैज्ञानिक अनुशासनों की आवश्यकता सदैव पड़ेगी।

केल्सन का मूलमानक अपनी मूल समझ में न संविधान है और न ही कोई संप्रभु। यदि केल्सन की आलोचना पर दृष्टिपात न करते हुए मूलमानक को केवल यहीं तक समझा जाए कि वह संविधान या संप्रभु के पीछे काम करने वाली एक परछाई है, जो इन्हें शक्ति एवं अधिकारिता देती है – तो इससे कोई विसंगति उत्पन्न नहीं होगी। आखिर हर विधिशास्त्रीय विचारधारा ने संविधान या संप्रभु को किसी न किसी माध्यम से अधिकारिता सौंपी ही है।

डायस लिखते हैं कि केल्सन के शुद्ध विधि के सिद्धांत का महत्त्व यह है कि यह प्रमाणवादी विचारधारा का परिमार्जित एवं संस्कारित रूप प्रस्तुत करता है और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में व्याप्त विधि की अन्य विषयों से अनावश्यक मिश्रण करने की परम्परा को झटका देकर विधि की शुद्धता कायम रखने का प्रयास करता है। फ्रीडमैन कहते हैं कि केल्सन ने निरपेक्ष सत्य की खोज में लगी हुई विधि विचारधाराओं में छुपी राजनैतिक विचार–पद्धतियों का पर्दाफाश किया और इसका विधि–शास्त्र के क्षेत्र पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। कहा जा सकता है कि विधि–शास्त्र के क्षेत्र में केल्सन का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने विधिशास्त्र को निश्चित सीमा में बाँधा और एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विकसित किया। आज यदि विधि–शास्त्र के पास अपनी एक अध्ययन–प्रविधि है, तो उसमें केल्सन का योगदान बहुत बड़ा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ए टेक्स्टबुक ऑफ जुरिस्प्रुडेंस, जी. डबल्यू. पैटन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड,2002.*
2. *जुरिस्प्रुडेंस, डायस, लेक्सिसनेक्सिस, गुड़गाँव, 2013.*
3. *द प्योर थ्योरी ऑफ लॉ, हेंस केल्सन, स्टैनफॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसॉफी, स्टैनफॉर्ड, यूएसए 2016.*
4. *विधिशास्त्र के मूल सिद्धांत, अनिरुद्ध प्रसाद, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010.*
5. *भारत का संविधान, डॉ. जय नारायण पांडेय, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, इक्यावनवाँ संस्करण,2018.*
6. *भारत का संविधान, आचार्य दुर्गा दास बसु, वाधवा नागपुर, आठवाँ संस्करण,2002.*
7. *मानव अधिकार, डॉ. एस. के. कपूर, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 2019.*
8. *विधिशास्त्र तथा विधि के सिद्धांत, डॉ. एन. वी. परांजपे, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद,2010.*